एकलव्य का सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम | अभ्यास पर चिन्तन

अरविन्द सरदाना

इस विचारोत्तेजक लेख में, लेखक एक ऐसे प्रयोग पर विचार करते हैं जिसने न सिर्फ़ शिक्षार्थियों के, बल्कि शिक्षकों के ज्ञान को भी पुख़्ता किया।

एकलव्य का सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम (1985-2002)[i] एक विकल्प था जिसे मध्य प्रदेश के तीन ज़िलों के आठ सरकारी स्कूलों में आज़माया गया था। यह प्रयोग महज़ वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक निर्माण तक सीमित नहीं था, बल्कि एक समग्र प्रयास होने के नाते इसमें शिक्षक प्रशिक्षण और आकलन भी शामिल थे।

पृष्ठभूमि

लर्निंग कर्व (अगस्त 2010) में प्रकाशित अपने लेख में, मेरी सहकर्मी रश्मि लिखती हैं कि "...इस प्रोजेक्ट ने इस बाबत सवाल खड़े किए कि नई पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन करने वाले शिक्षार्थियों से समझ और उपलब्धि को लेकर क्या अपेक्षा की जानी चाहिए। लाज़िम है, इससे यह चर्चा उभरी कि इन शिक्षार्थियों का आकलन किस तरह किया जाए और यह कैसे मापा जाए कि क्या उन्होंने नई विषयवस्तु और शिक्षण-विधि से अपेक्षित अवधारणात्मक स्पष्टता और कौशल विकास का ज़रूरी स्तर हासिल कर लिया है।"

अतः इस कार्यक्रम में, न सिर्फ़ बच्चों के लिए, बल्कि सभी के लिए अनुभव से सीखना व विकसित होता अभ्यास निहित था। और खुली-किताब परीक्षा प्रणाली सतत रूप से इसकी याद दिलाती रही। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम[ii] के पदचिह्नों पर चलकर, हमने इस परीक्षा प्रणाली को रटन्त पद्धति, जो उस समय प्रचलित थी, के विरुद्ध सबसे कारगर औज़ार के रूप में चुना था। कार्यक्रम के ढाँचे में निबद्ध यह चेतावनी हमें हमारे द्वारा तय किए गए पाठ्यचर्या उद्देश्यों, जो कई मुश्किलों और अप्रत्याशित चुनौतियों से भरे थे, को ध्यान में रखने में मदद करती थी।

खुली-किताब परीक्षा

इस प्रणाली के लागू किए जाने के पहले ही वर्ष, 1989 में घटी एक घटना ने खुली-किताब प्रणाली की केन्द्रीय सांस्कृतिक चुनौती सामने खड़ी कर दी। देवास ज़िले के एक ग्रामीण स्कूल में, परीक्षा के कुछ ही दिन पहले, एक लड़का सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के पास आया और अनुरोध करने लगा :

"सर, क्या आप मुझे अपनी पाठ्यपुस्तक दे सकते हो?"

"क्या! पूरा साल गुज़र गया और तुमने अब तक किताब नहीं ख़रीदी?"

"सर, किराया ले लीजिए..." बिना पलक झपकाए, लड़के ने कहा।

"क्या बकवास है, लो रखो!"

यह वह केन्द्रीय चुनौती थी जिसका सामना हमने शुरुआती कुछ सालों में किया। सामाजिक विज्ञान को लेकर एक आम परिपाटी यह थी कि पाठ्यपुस्तक के उन हिस्सों को चिह्नित कर दिया जाता था जिन्हें रटकर परीक्षा में उगल देना होता था। सवाल हमेशा पाठ्यपुस्तक से पूछे जाते थे। उससे इतर किसी भी चीज़ को 'पाठ्यक्रम के बाहर का' व अनुपयुक्त माना जाता था। ऐसे माहौल में, खुली-किताब परीक्षा की व्याख्या पाठ्यपुस्तक से नक़ल करने के लाइसेंस/ छूट के रूप में की गई।

एकाध साल बाद, शिक्षार्थियों को समझ आने लगा कि यह उतना आसान भी नहीं है। यदि उन्होंने पाठ ठीक से नहीं पढ़े होते, तो वे पन्ने ही पलटते रहते या अप्रासंगिक पाठ्यांशों को उतार देते। यहाँ तक कि शिक्षक भी, बोर्ड परीक्षा के कुछ दौरों के बाद ही, आकलन के व्यापक उद्देश्यों को आत्मसात कर पाए। प्रशिक्षण सत्रों के दौरान, अनुवर्तन के तौर पर एक अभ्यास किया जाता था जिसमें बोध-आधारित प्रश्नों को तर्क-आधारित प्रश्नों से अलग किया जाता था। बोध-आधारित प्रश्न उन्हें कहते हैं जिनके उत्तर पाठ के किसी ख़ास हिस्से में ढूँढ़े जा सकते हैं, जबकि तर्क-आधारित प्रश्नों के विभिन्न तत्व अध्याय के अलग-अलग भागों में फैले हो सकते हैं। तर्क की माँग करने वाले प्रश्न कई प्रकार के हो सकते थे, जैसे कि वे प्रश्न जिनके लिए पाठ में फैले तत्वों को ढूँढ़कर सार करना होता था, स्थितियों की तुलना करनी होती थी, किसी विचार को लागू करना होता था, तर्काधारित अनुमान लगाना होता था, कोई मत ज़ाहिर करना होता था इत्यादि।

खुली-किताब प्रणाली दृश्य सम्बन्धी प्रश्नों को सम्बोधित करने में ख़ासतौर से मददगार साबित हुई। इनमें तस्वीरें, मानचित्र, तालिकाएँ व अन्य तरह के चित्र शामिल थे। अलग-अलग

अध्यायों के चित्रों की तुलना करना, उनमें नए-नए तत्व ढूँढ़ना, उनकी तुलना समसामयिक जीवन से करना – चित्रों के इर्द-गिर्द नए सवाल रचने की सम्भावनाएँ ज़बरदस्त थीं। खुली-किताब परीक्षाओं का केन्द्र-बिन्दु यही था और है – नए सवाल रचने की क्षमता बढ़ाना और पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नों का इस्तेमाल न करना।

एक उदाहरण : यूएसए में, खेत के मालिक सैकड़ों एकड़ में फैले अपने खेतों में एक ही फ़सल उगाते हैं।

क. इस तथ्य का चित्रण पृष्ठ-24 पर दिए गए चित्र में कैसे किया गया है?

ख. इतने बड़े खेतों में एक ही फ़सल उगाने का क्या फ़ायदा होता है?

इससे एक ऐसा असर हुआ जो परीक्षा के भी परे जाकर कक्षा के कामकाज व शिक्षार्थियों व पाठ्यपुस्तकों के बीच के रिश्ते को भी प्रभावित करने लगा। बच्चे पन्नों को बड़े ध्यान से पढ़ने लगे, बारीक़ियों पर ग़ौर करने लगे, सवाल करने लगे और मानचित्रों पर ज़मीन और महासागरों को चिह्नित करने लगे। हमारे लिए, इन अनुभवों ने शिक्षणशास्त्र के स्तर पर इस विचार को पुख़्ता किया कि चित्र पाठ में केवल जगह भरने के लिए नहीं होते बल्कि उसका एक अभिन्न हिस्सा होते हैं। इससे अध्यायों को अलग-अलग पन्नों पर फैले स्टोरीबोर्ड और चित्रों के साथ डिज़ाइन करने में अधिक रचनात्मकता की गुंजाइश बनी। अब विषयवस्तु और शैक्षणिक प्रयोगों को रचनात्मक तरीक़ों से जोड़ा जा सका।

एक ग्रामीण स्कूल की कुछ यादें मेरे ज़हन में छप चुकी हैं। इस स्कूल के शिक्षक एक नीरस-सा अभ्यास करवाते थे जो हमेशा मुझे हैरान करता। किसी भी अध्याय को शुरू करने से पहले, वे शिक्षार्थियों से तस्वीरें, चित्र, तालिकाएँ, ग्राफ़, प्रवाह रेखाचित्र (फ़्लो डायग्राम) व अध्याय में जो कुछ दृश्यात्मक होता, गिनने के लिए कहते। बाद में, मुझे एहसास हुआ कि इस तरह उनसे गिनती करवाकर, वे दरअसल उन्हें इन सब पर ध्यान-केन्द्रित करने में मदद कर रहे थे। अध्यायों में ये दृश्य/ चित्र ही थे जो हमेशा बच्चों को आकर्षित करते थे और वे मानचित्रों व अन्य चित्रों को बड़े चाव के साथ देखा करते। ग़ौरतलब है कि ये पुस्तकें ही उनके परिवेश में उपलब्ध चन्द मुद्रित सामग्री थी और चित्रों की नवीनता बड़ी आकर्षक थी। कभी-कभार, शिक्षक अध्याय के उप-शीर्षकों की ओर भी इशारा करते और फिर उन पर अपनी ही कोई भूमिका देकर आगे बढ़ते।

खुले प्रश्न (Open-ended questions)

खुली-किताब आकलन प्रणाली का एक अन्य घटक खुले सवाल थे। किसी स्थिति पर बच्चों के मत पूछे जाते, जैसे "अगर तुम वित्त मंत्री होते और राजस्व बढ़ाना चाहते, तो तुम किस चीज़ में वृद्धि करते : नमक पर कर या कारों पर लगाया जाने वाला कर?" यहाँ उद्देश्य उनके जवाब प्राप्त करना और उनके पीछे के तर्क को जानना था, न कि उनके जवाबों का मिलान पाठ या शिक्षक के नज़रिए से करना। इस पहलू को आत्मसात करने में कुछ अभ्यास लगा।

चुनौतियाँ

खुली-किताब परीक्षा को लेकर दो प्रमुख चुनौतियाँ थीं। एक तो नए सवाल बनाना जो पाठ से सम्बन्धित हों, मगर पाठ्यपुस्तक में पहले से मौजूद सवालों से अलग हों। इसके लिए काफ़ी अभ्यास की ज़रूरत पड़ी जोकि आमतौर पर बोर्ड परीक्षा के लिए पर्चे तैयार करने से सम्बन्धित कार्यशालाओं का हिस्सा होता। शुरुआती झिझक – कि यह भौतिक विज्ञानों के लिए मुमकिन है मगर सामाजिक विज्ञानों के लिए नहीं – पर जीत हासिल कर ली गई। दूसरी चुनौती थी बच्चों को उन्हीं के शब्दों में लिखने के लिए प्रोत्साहित करना और शिक्षकों को इस प्रक्रिया के प्रति आश्वस्त करना।

एक सहकर्मी ने सुझाया था कि हमें बच्चों की उत्तर पुस्तिकाओं का नमूना लेकर एक कार्यशाला आयोजित करनी चाहिए, वह भी बोर्ड परीक्षा ख़त्म होने के काफ़ी समय बाद, ताकि जाँचने और अंक प्रदान करने का सन्दर्भ न रहे। इसका उद्देश्य सामूहिक रूप से यह जाँचना था कि बच्चे क्या लिख रहे थे और उनके उत्तरों के पीछे कैसी वैचारिक प्रक्रियाएँ शामिल थीं। यह कार्यशाला 'धार कार्यशाला' के नाम से जानी जाती है। यह सभी के लिए एक बहुमूल्य अनुभव रहा। एक बार आपने व्याकरण और वाक्य संरचना से जुड़ी चूकों और मुश्किलों को नज़रअन्दाज़ कर लिया और वह भी बग़ैर अंक देने के दबाव के, तो बच्चों की वैचारिक प्रक्रियाएँ बख़ूबी उभरने लगीं जिसने सभी को प्रभावित किया। इसके अलावा, जब हमें उत्तरों में पैटर्न दिखने लगा और हमने आपस में पूछा कि यह कैसे उभर रहा है, तो हम हमारे ही पाठों की ताक़त और कमज़ोरियाँ, दोनों ही देख पाए। यह हमारे लिए एक आईने-सा था जिसने पाठ्यपुस्तकों के पुनर्गठन को संशोधित करने में भी हमारी बहुत मदद की।

अन्तर्दृष्टियाँ

कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ तो बच्चों की पुस्तिकाओं के विश्लेषण से साफ़तौर पर उभरीं। हमने देखा कि यह ज़रूरी नहीं कि बच्चों का उनके अपने शब्दों में लिखना और अपने नज़रियों को व्यक्त करना सीखना उन सभी अपेक्षित 'बिन्दुओं' को छू लेगा जिनकी माँग एक मॉडल उत्तर कर सकता है। हमें उनकी अपने तर्कों को लिखकर पेश कर

पाने की क़ाबिलियत पर ध्यान देकर उसे प्रोत्साहित करना चाहिए, बजाय महज़ सभी अपेक्षित बिन्दुओं का ज़िक्र कर देने के। यह अपेक्षित होना चाहिए कि अभिव्यक्ति में अच्छी-ख़ासी विविधता होगी; और इसकी सराहना किसी 'मॉडल उत्तर' को हूबहू उतारने से ज़्यादा करनी पड़ेगी। सालों लग जाते हैं किसी विषय पर अपने ख़ुद के शब्दों में लिख पाने की क़ाबिलियत और आत्मविश्वास को विकसित करने में।

खुली-किताब परीक्षा प्रणाली के उद्देश्यों ने एक परिवर्तनकारी भूमिका अदा की। इसने स्पष्ट रूप से सभी को (शिक्षकों, शिक्षार्थियों और एकलव्य दल को) उपयुक्त संकेत भेजे। यदि पीछे मुड़कर इस अनुभव की तुलना एनसीईआरटी (या एससीईआरटी) के पाठ्यचर्या सुधारों से करें तो हम उनकी कोशिशों में परीक्षा प्रणाली के बदलाव की अनुपस्थिति को देख सकते हैं। यदि आगे कहीं पाठ्यचर्या सुधार का अवसर बनता है, तो वहाँ क्रम बदलकर आकलन में बदलावों से सुधार शुरू करना चाहिए और पाठ्यपुस्तक सम्बन्धी सुधारों पर बाद में आना चाहिए।

अभ्यास के लिए मौखिकता का महत्त्व

अपने शब्दों में लिखने को लेकर अच्छी बात यह थी कि वे मौखिक रूप से तर्क-वितर्क करना सीख रहे थे। अभ्यास केवल लिखित रूप के लिए नहीं होता। दरअसल, यह तो आस-पास के समाज, जो मुख्य रूप से मौखिक ही रहा था, की स्वाभाविक ताक़त थी। अतः तर्क समृद्ध थे, सवाल पैने थे और मत रखे जाते थे बेबाक़ी से। इस ज़िन्दा ताक़त से हमारा सम्पर्क कई तरीक़ों से हुआ।

अध्याय के हरेक भाग के अन्त में, बोध और तर्क पर आधारित सवालों से भरा एक टेक्स्टबॉक्स हुआ करता था। शिक्षकों ने इस डिज़ाइन का बहुत समर्थन किया क्योंकि इससे समझ को जाँचने में मदद मिलती और साथ ही, उन केन्द्रीय विचारों के साथ जुड़े रहने में भी मदद मिलती जिन्हें उभारा जा रहा था। हालाँकि, एक शिक्षक ने सवालों की ओर इशारा करते हुए कहा, "आपने जो ये गतिरोधक लगाए हैं, कभी-कभी बहुत अधिक हो जाते हैं। रुककर जाँचने और अध्याय के प्रवाह के बीच सन्तुलन बनाएँ।" यह शिक्षकों के कामकाज से उभरा और हमारी अध्याय-रचना का पथप्रदर्शक सिद्धान्त बन गया।

कक्षा अवलोकनों ने दर्शाया कि अधिकांश बोध-आधारित व तर्क-आधारित प्रश्नों पर मौखिक रूप से चर्चा की जाती थी, जिससे बच्चों की भागीदारी बढ़ती और साथ ही, पाठ के साथ व अपने इर्द-गिर्द के समाज के साथ उनका उनका जुड़ाव बनता था। कुछ प्रश्नों से तो शिक्षक चकरा जाते। उदाहरण के बतौर, उस पाठ के सन्दर्भ में जो समझाता है कि मतदाता सूची कैसे तैयार होती है। एक बच्ची ने पूछा, "मेरे परिवार के लोगों के नाम गाँव और शहर, दोनों जगहों पर पंजीकृत हैं। हमारे दो घर हैं। उसमें ग़लत क्या है?" शिक्षक हक्के-बक्के रह गए मगर बाद में जवाब देने का वादा भी किया। अगर आप इस कोर्स को एक दशक से भी ऊपर तक पढ़ाने के अनुभवों पर लिखी हमारे एक शिक्षक की किताब पढ़ेंगे, तो आप पाएँगे कि वे ऐसे कई सवाल उद्धरित करते हैं जो बच्चों ने कक्षा में पूछे थे (देखें प्रकाश कान्त)। उनकी किताब का एक यादगार वृत्तान्त है : जब वे कक्षा का परिचय ग्लोब से करवाते हैं तो सवालों की झड़ी लग जाती है। जब वे व्याख्याओं से जूझ रहे थे, उस बीच एक बच्चे ने पूछा, "आपको यह सब कैसे पता? आपको किसने बताया?" एक अन्य स्कूल में, जब एक शिक्षक हिन्दू धर्म के अलग-अलग रूपों का परिचय दे रहे थे, एक बच्चे ने टिप्पणी की, "मगर मैं भगवान में विश्वास नहीं करता!" और तब एक अन्य बच्चे ने कहा, "सर, इसका क्या होगा?"

90 के दशक के मध्य में, मौखिकता का अन्वेषण और मज़बूत हुआ जब कई युवा विद्वान हमारी टीम में जुड़े। इस दौरान, हमने अपनी पाठ्यपुस्तक को संशोधित किया और इस प्रश्न के प्रमाण की तलाश शुरू कर दी कि पाठ्यपुस्तक में जो अवधारणात्मक विकास निहित था, क्या वह सचमुच हो रहा था (देखें रश्मि पालीवाल)। इसके लिए हमने लिखित उत्तरों के साथ सवाल तैयार किए और बच्चों के साथ मौखिक चर्चाएँ भी कीं ताकि हमें अपने अन्वेषण के लिए समृद्ध पृष्ठभूमि और सुराग़ मिल सकें।

मौखिक चर्चाओं से बच्चों के वैचारिक बहाव को समझने में भी मदद मिली। हमारे पाठों में कहानियों व वृत्तान्त अध्ययनों (केस स्टडीज़) का काफ़ी इस्तेमाल किया गया है। बच्चे आसानी से कहानी की बारीक़ियों में रम जाते, मगर क्या वे किसी कहानी-विशेष के परे जाकर उस अमूर्तिकरण से जुड़ पाते जिसकी कोशिश पाठ कर रहा होता था? ऐसे अन्वेषणों ने हमें अध्यायों के बारे में फ़ीडबैक मुहैया करवाया। एक अन्य सवाल, जिस पर मौखिक रूप से पड़ताल की गई, यह था कि क्या बच्चे कक्षा-8 के स्तर पर और अधिक जटिल पाठ सम्हाल पाएँगे। यह आश्चर्यजनक था कि वे समाज के अमूर्त सत्ता समीकरण को तो सम्हाल पाते थे, मगर शासन की संरचनाएँ उनकी समझ के दायरे के बाहर प्रतीत होती थीं। इस बात के एहसास ने हमें एक अध्ययन को रूप देने में मदद की, जो अब प्रकाशित हो चुका है (देखें एलेक्स एम.जार्ज)। पाठ्यपुस्तक से जुड़ाव का मौखिक घटक विस्तृत था और वह कक्षा की चर्चा का एक जीवन्त हिस्सा बन गया था, मगर दुर्भाग्यवश, हम इसे औपचारिक आकलन का हिस्सा नहीं बना सके।

शिक्षकों के लिए प्रश्न बैंक

टीम में शामिल हुए युवा विद्वानों ने सुझाया कि हमें शिक्षकों को अभ्यास हेतु प्रश्न मुहैया करवाने की ज़रूरत है। उन्हें महसूस हुआ कि बच्चों को स्वाभाविक तौर पर आत्मविश्वास के साथ लिखने की तरफ़ ले जाने के लिए अध्यायों के अन्त में दिए गए सवाल काफ़ी नहीं थे। साथ ही, शिक्षकों द्वारा बच्चों के लिखित कार्य को सुधारने और दिशा देने की संस्कृति भी नदारद थी। इस खाई को पाटने का एक तरीक़ा था – शिक्षकों को अभ्यास के लिए मुद्रित सवालों का एक सेट प्रदान किया जाए। टीम ने शिक्षकों को फ़ीडबैक देने में भी मदद की। इस तरह एक प्रश्न-बैंक विकसित होने लगा।

पाठ्यपुस्तकों का संशोधन

विज्ञान कार्यक्रम द्वारा विकसित किए गए सिद्धान्त (लैब से फ़ील्ड तक) का अनुसरण करना हमारी ख़ुशक़िस्मती थी। जो शुरुआती पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई थीं, उन्हें 'लैब' प्रोटोटाइप माना गया और स्कूलों में कुछ ही सालों के अनुभव के बाद, उन्हें संशोधित करना एक ज़रूरी प्रोटोकॉल माना गया। पहला फ़ीडबैक शिक्षकों से मिला था, ख़ासकर प्रशिक्षण सत्रों के दौरान, जहाँ शिक्षकों और पाठ्यपुस्तक लेखन टीम के बीच का संवाद सामाजिक संवेदनशीलता व अन्य ज़रूरी मुद्दों को शिक्षकों की नज़र से समझने के लिए बेहद ज़रूरी होता। दूसरे स्तर का फ़ीडबैक, टीम के कक्षा अवलोकनों और फ़ील्ड विज़िट्स के ज़रिए मिला। तीसरा स्तर, बच्चों की उत्तर पुस्तिकाओं के विश्लेषण से मिला, उनमें ऐसे पैटर्न देखे जा सकते थे जो पाठ की कमज़ोरियों की ओर इशारा करते थे। इन अलग-अलग स्रोतों से मिले फ़ीडबैक के साथ, संशोधन के मुद्दों का सामना आत्मविश्वास से किया गया।

संक्षेप में

अभ्यास केवल बच्चों के लिए नहीं होता। पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक तैयारी, आकलन प्रारूप और स्कूली सन्दर्भ – ये सभी परिवर्तनशील हैं और बच्चों के अनुभव को ध्यान में रखकर, हमें इस क़ाबिल होना चाहिए कि खुले मन के साथ पूछ सकें कि कैसे इन परिवर्तनशील तत्वों को तोड़ा-मोड़ा जाए जिससे सीखना सभी बच्चों के लिए और अधिक अनुकूल बन सके। हमने इस पर और बारीक़ी से द *इनसाइडर्स नैरेटिव* पुस्तक के *राइटिंग एंड रिवीज़िंग द बुक्स* खण्ड में चर्चा की है (देखें पूनम बत्रा)।

सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम के लम्बे इतिहास के दौरान (1985-2002), अभ्यास की ज़रूरत पर लगातार ज़ोर दिया गया। इससे पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को पुष्टि मिली। इन्हीं उद्देश्यों के अनुशीलन ने वह उपयुक्त सांस्कृतिक वातावरण निर्मित किया जिसकी ज़रूरत इस कार्यक्रम को थी। दरअसल महत्त्व इस बात का नहीं है कि हमने क्या किया, बल्कि ज़रूरी है यह विचार कि पाठ्यचर्या के उद्देश्यों की खुली और एकाधिक समीक्षाएँ किसी विशेष सामाजिक सन्दर्भ के लिए कामकाज के मार्गों की ओर इशारा करेंगी।

आभार

लेखक अपने पूर्व सहकर्मी राम मूर्ति और संजय तिवारी का उनके योगदान के लिए शुक्रिया अदा करना चाहेंगे।

Endnotes

i https://www.eklavya.in/past-work-top/programmes-past-top/social-science-programme

ii https://www.eklavya.in/past-work-top/programmes-past-top/hstp

References

Alex M George, Children's Perception of Sarkar: A Critique of Civics Textbooks, Eklavya, 2007.

Batra Poonam edited, Social Science Learning in Schools: Perspectives and Challenges, Sage, 2010.

Prakash Kant, *Samajik Adhyan Navachar: Bacchon ke Saath Maine bhi Seekha Eklavya*, 2021.

Rashmi Paliwal, Assessment of Social Science in Schools - Our Experiences, Experiments and Learning, Learning Curve, August 2010.

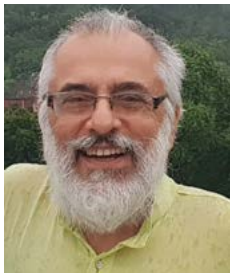

अरविन्द सरदाना कई वर्षों तक एकलव्य के सामाजिक विज्ञान दल के सदस्य रहे हैं। वे एनसीईआरटी व कई अलग-अलग राज्य सरकारों के पाठ्यचर्या विकास कार्यों के साथ भी जुड़े रहे हैं। उनसे *arvindewas@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अतुल वाधवानी **पुनरीक्षण :** सुशील जोशी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय